बस्तर की जनजातीय चित्रकला

डॉ. बिन्दु साहू*

चित्रकला किसी समाज, समुदाय या व्यक्ति की आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन-शैली को दर्शाने का एक प्रयत्न है। चित्रों के माध्यम से प्रतिफलित की जाने वाली कला एक काल्पनिक भाव है। सदियों से ही जनजातीय समुदाय अपने सांस्कृतिक परिवेश को इसी कला के माध्यम से दर्शाने का प्रयास करता आ रहा है। जिसमें उनकी धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन-शैली की झलक देखने को मिलती है। मानव का प्रकृति के साथ अटूट संबंध होने के कारण सौंदर्य के प्रति स्वाभाविक रूचि चित्रों के माध्यम से ही प्रतिफलित होती आ रही है। प्राचीन काल में पारंपरिक रंगों और पत्थर के औजारों द्वारा चित्र बनाए जाते थे। जिनमें मानव विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे, जीव-जंतु, नदी-पहाड़, देवी-देवता और प्राकृतिक वस्तुओं को महत्त्वपूर्ण स्थान देता था। ये चित्र सुरक्षा, सुख, समृद्धि, खुशहाली एवं अनिष्ट शक्तियों से रक्षा का प्रतीक माने जाते थे। जनजातीय समुदायों में किसी न किसी प्रकार की कला जरूर देखने को मिलती है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है। यही कला उस जनजाति की पहचान का प्रतीक मानी जाती है। यह परंपरा आज भी उनके जीवन एवं संस्कृति में प्रतिफलित हो रही है। निरगुणे (2005) ने पारंपरिक रूप से अंकित किए जाने वाले चित्रों को लोकचित्र कहा है जो कि प्रायः रंगों, मिट्टी, गोबर एवं कागज से निर्मित किए जाते हैं। यहाँ रंगों से निर्मित चित्रों के चार मूल आधार माने जाते हैं। प्रथम, भित्ति या दीवार पर अंकित चित्र को भित्ति चित्र कहा जाता है, जैसे-*कोहबर, जिरौती, सुराती, नाग, साँझी* इत्यादि। द्वितीय, भूमि पर अंकित चित्र को भूमि अलंकरण या *मांडणा* चित्र कहा जाता है, जैसे-रंगोली, अल्पना इत्यादि। तृतीय, कागज, कपड़ा एवं पत्तल पर अंकित

* समाजशास्त्र एवं सामाजिक समाजविज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरटंक, मध्य प्रदेश